शिवशंकर गुरगर

बनाम

दिलीप

(सिविल अपील संख्या 52/2014)

3 जनवरी, 2014

[पीठ न्यायमूर्ति रंजना प्रकाश देसाई और जे. चेलमेश्वर]

मध्य प्रदेश आवास नियंत्रण अधिनियम, 1961:

धारा 12 (1) (क) और 13- **बेदखली और किराए के बकाया के लिए वाद-** समझौता डिक्री- निर्धारित समय सीमा में किराएदार द्वारा बकाया किराया राशि जमा करने में विफलता से भू स्वामी का कब्जे हेतु अधिकारी होना- किराएदार द्वारा पालना नहीं- निष्पादन- निष्पादन न्यायालय द्वारा किराएदार को किराया जमा करने हेतु समय अनुदत्त किया जाना व किराएदार द्वारा किराया जमा करवाने पर निष्पादन याचिका खारिज कर देना- अभिनिर्धारित किया गया कि- धारा 13 से स्पष्ट है कि न्यायालय में निर्णीत ऋणी/किराएदार द्वारा किराया जमा करवाने या भुगतान करने पर केवल बेदखली के वाद लम्बन के दौरान या किरादार द्वारा बेदखली की डिक्री या आदेश के विरुद्घ पेश अपील में ही विचार किया जा सकता है- निष्पादन कार्यवाही पर इसकी प्रयोज्यता नहीं- आगे यह कि धारा 148

सीपीसी के तहत न्यायालय द्वारा समय विस्तार करने की शक्ति का प्रयोग तभी किया जा सकता है जब संहिता द्वारा विहित कार्य करने के लिए न्यायालय ने कोई समय अनुदत्त किया हो- पक्षकारों द्वारा समझौते से तय किए गए समय पर यह धारा लागू नहीं- निष्पादन न्यायालय द्वारा किराएदार को किराया जमा करने हेतु दिया गया समय विस्तार का आदेश शून्यता लिए हुए है, इस आदेश को भू स्वामी द्वारा चुनौती नहीं देने मात्र से उसे कब्जा प्राप्ति के अधिकार से अनर्हित नहीं किया जा सकता है- निष्पादन याचिका स्वीकसा की गई- दीवानी प्रक्रिया संहिता 1908-धारा 148- व्यवहार व प्रक्रिय **डिक्री** समझौता डिक्री- निर्धारित समय सीमा में किराएदार द्वारा बकाया किराया राशि जमा करने में विफलता व भू स्वामी का कब्जेे हेतु अधिकारी होना- डिक्री का निष्पादन- निष्पादन न्यायालय द्वारा डिक्री को अधिनियम के प्रावधानों के प्रतिकूल करार देना व किराएदार को किराया जमा करने हेतु समय अनुदत्त किया जाना व किराएदार द्वारा किराया जमा करवाने पर निष्पादन याचिका खारिज कर देना- अभिनिर्धारित हुआ कि यह आदेश डिक्री में संशोधन के समान है तथा निष्पादन न्यायालय की अधिकारिता से परे होने के कारण शून्य है- निष्पादन न्यायालय डिक्री से परे नहीं जा सकता है- इसको ठिक्री की पालना वैसे ही निष्पादित करवानी पड़ेगी जैसी वह है- इस प्रकार के शून्य आदेश से न तो किसी अधकार की व न ही किसी दायित्व की उत्पति होती

है- मध्य प्रदेश आवास नियंत्रण अधिनियम, 1961 की धारा 12 (1) (क) और 13 **मध्य प्रदेश आवास नियंत्रण अधिनियम, 1961 की धारा 12 (1) (ए) के तहत दीवानी वाद दायर बेदखली व किराए की प्राप्ति के वाद में इस आशय की समझौता डिक्री पारित की गई कि प्रत्यर्थी/किराएदार द्वारा छः माह की अवधि में कराया राशि दी जाएगी व उसमें विफल रहने पर अपीलार्थी/ भू स्वामी कब्जे का हकदार होगा। निष्पादन न्यायालय द्वारा किराएदार को किराया जमा करने हेतु 15 दिन का समय अनुदत्त किया गया व किराएदार द्वारा किराया जमा करवाने पर निष्पादन याचिका खारिज कर दी गई। निष्पादन न्यायालय द्वारा आगे यह निर्धारित किया गया कि धारा 13 (1) (क) के प्रभाव से, किराएदार द्वारा निर्धारित समय सीमा में किराया राशि जमा करवाने में विफल रहने की स्थिति में किराएदार के बेदखल होने की शर्त की हद तक समझौता डिक्री शून्य है। उच्च न्यायालय ने मकान मालिक / अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत पुनरीक्षण याचिका को तीन आधारों पर खारिज किया गया (I) अपीलार्थी को वह समझौता ही नहीं करना था जिस पर डिक्री पारित की गई, (ii) जब अपीलकर्ता द्वारा निष्पादन याचिका दायर की गई थी, तो अपीलकर्ता ने निष्पादन न्यायालय द्वारा प्रतिवादी को बकाया किराए का भुगतान करने के लिए दिए गए विस्तारित समय के संबंध में उक्त आदेश को चुनौती देने का विकल्प नहीं चुना। अपीलकर्ता की ऐसी विफलता का तात्पर्य यह है कि**

अपीलकर्ता ने उक्त आदेश को स्वीकार कर लिया है, इसलिए, अपीलकर्ता/मकान मालिक अपनी संपत्ति के कब्जे के प्रत्युद्घरण का हकदार नहीं था; (iii) इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि प्रतिवादी ने अंततः बकाया किराया जमा कर दिया, उसके कब्जे को अधिनियम की धारा 12(3) और 13(5) के मद्देनजर संरक्षित किया जाना आवश्यक है।

अपील को स्वीकार करते हुए निर्णीत किया गया कि

1.1 उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए सभी कारण कानून में पोषणीय नहीं हैं। उच्च न्यायालय ने निष्पादन न्यायालय के इस निष्कर्ष की सत्यता की जांच नहीं की कि समझौता डिक्री, जहां तक वह निर्धारित समय के भीतर किराए की बकाया राशि जमा करने में विफलता की स्थिति में प्रतिवादी को बेदखल करने से संबंधित थी, अधिनियम के प्रावधानों के साथ असंगत है और इसलिए शून्य है।

1.2 जिन कारणों ने अपीलकर्ता को समझौता करने के लिए मजबूर किया, वे वर्तमान वादग्रस्त बिंदु के निर्णय के लिए अप्रासंगिक हैं। प्रतिवादी/निष्पादित ऋणी इस आधार पर समझौता डिक्री का उल्लंघन नहीं कर सकता है कि उसके प्रतिद्वंद्वी ने अपने दावे की पोषणीयता के बारे में कुछ गंभीर विवाद के मद्देनजर समझौता किया है। समझौता करने में अपीलकर्ता का आचरण केवल अपीलकर्ता को समझौता डिक्री की तारीख से छह महीने की अवधि के भीतर कब्जा वापस पाने से रोकता है, चाहे

प्रतिवादी ने अंतिम तिथि तक बकाया किराए का भुगतान किया हो या नहीं। पैरा 14

1.3 निष्पादन न्यायालय के दिनांक 23.11.2005 के आदेश को चुनौती देने में अपीलकर्ता की विफलता (जिसके द्वारा निष्पादन न्यायालय ने प्रतिवादी को किराए की बकाया राशि जमा करने के लिए 15 दिन का समय दिया था) अपीलकर्ता को विवादग्रस्त संपत्ति पर कब्ज़ा वापस पाने का दावा करने से रोकती है, भी उतना ही अपोषणीय है, क्योंकि (i) हमारी राय में, निष्पादन न्यायालय का दिनांक 23.11.2005 का आदेश उसके अधिकार क्षेत्र से परे और अमान्य है। एकमात्र स्रोत जो सिविल कोर्ट को समय बढ़ाने की शक्ति प्रदान करता है। इस धारा की भाषा से यह स्पष्ट है, ऐसी शक्ति का प्रयोग केवल उस मामले में किया जा सकता है जहां इस न्यायालय द्वारा निर्धारित किसी भी कार्य को करने के लिए न्यायालय द्वारा एक अवधि तय की गई है या दी गई है। इस तरह के एक समझौता डिक्री में, यह शर्त कि निर्णय लेने वाले देनदार को एक निर्दिष्ट अवधि के भीतर पैसे का भुगतान करना आवश्यक है, पक्षकारों के बीच के समझौते द्वारा एक शर्त है और यह न्यायालय द्वारा तय की गई या दी गई अवधि नहीं है। इसलिए, ऐसी स्थिति में सीपीसी की धारा 148 लागू नहीं होती। पैरा 15

हुकुमचंद बनाम बंसीलाल और अन्य 1967 SCR 695= एआईआर 1968 एससी 86 पर विश्वास जताया गया।

(ii) दिनांक 23.11.2005 का आदेश वस्तुतः डिक्री के संशोधन के बराबर है और निष्पादन न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के बिना है, इसलिए, यह अमान्य है। यह कानून का स्थापित सिद्धांत है कि निष्पादन न्यायालय डिक्री से परे नहीं जा सकता है। किसी डिक्री को संशोधित करने का उसे कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है। उसे डिक्री को वैसे ही क्रियान्वित करना होगा जैसी वह है। यह सुस्थापित विधि है कि ऐसा शून्य आदेश न तो कानूनी अधिकार और न ही दायित्व पैदा कर सकता है। इसलिए, अपीलकर्ता को इस आधार पर विवादित संपत्ति पर कब्ज़ा वापस पाने के उसके अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता है कि उसने इस तरह के शून्य आदेश को चुनौती देने का विकल्प नहीं चुना है। पैरा 15-16

दीपा भार्गव और अन्य बनाम महेश भार्गव और अन्य 2008(17)SCR 636= [(2009) 2 एससीसी 294] पर विश्वास किया गया।

1.4 अधिनियम की धारा 12(1)(ए) के मकान मालिक को किरायेदार को बेदखल करने में सक्षम बनाती है यदि वह सफलतापूर्वक यह स्थापित कर सके कि किरायेदार पर वास्तव में किराया बकाया है और उसने, स्वयं पर नोटिस की तामील होने के पश्चात, मांग के बावजूद धारा 12(1)(ए) के

तहत निर्दिष्ट अवधि के भीतर किराये की बकाया राशि न तो निविदत्त की और न ही भुगतान की। पैरा 19

1.5 धारा 13 को पढ़ने से स्पष्ट रूप से यह संकेत मिलता है कि निर्णीत ऋणी (किरायेदार) द्वारा न्यायालय में किराए का भुगतान या जमा केवल बेदखली या बेदखली के किसी डिक्री या आदेश के विरुद्ध अपील (किरायेदार द्वारा) के मुकदमे के लंबित होने के दौरान ही किया जाता है।। बेदखली की डिक्री की निष्पादन कार्यवाही पर धारा 13 का कोई अनुप्रयोग नहीं है जब मकान मालिक को किराया भुगतान न करने पर उसे पहले ही व्यतिक्रमी ठहराया जा चुका है। इसलिए, निष्पादन न्यायालय की धारा 13(1) की व्याख्या पोषणीय नहीं है।

श्रीमती नई बहू बनाम लाला रामनारायण और अन्य 1978(1)SCR 723= (1978) 1 एससीसी 58

1.6 परिणास्वररूप, न तो अपीलाधीन निर्णय व न ही मकान मालिक की निष्पादन याचिका को खारिज करने वाले निष्पादन न्यायालय के आदेश को बरकरार रखा जा सकता है। अपीलकर्ता द्वारा दायर निष्पादन याचिका को भी अनुमति दी जाती है। निष्पादन न्यायालय अब प्रतिवादी को विवादित परिसर से बेदखल करने और अपीलकर्ता को उसका कब्जा सौंपने के लिए आवश्यक कदम उठाएगा।

निर्णयज विधि संदर्भः

1967 SCR 695 भरोसा किया गया पैरा 15

2008(17)SCR 636 भरोसा किया गया पैरा 15

1978(1)SCR 723 लागू नहीं होना माना पैरा 26

सिविल अपीलीय अधिकारिताः सिविल अपील सं. 52/2014

सी. आर. सं. 173/2007 में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय की इंदौर पीठ के निर्णय और आदेश दिनांकित 28.10.2010 से

अधिवक्तागण राज किशोर चौधरी, टी. महिपाल, नीरू शर्म अपीलार्थी की तरफ से

निर्णय लेखन द्वारा न्यायमूर्ति जे. चेलमेश्वर

1. अपील की अनुमति दी गई।

2. अपीलकर्ता ने प्रतिवादी को बेदखल करने और किराए के बकाया की वसूली के लिए मध्य प्रदेश आवास नियंत्रण अधिनियम, 1961 (इसके बाद "अधिनियम" के रूप में संदर्भित) की धारा 12 (1) (ए) के तहत दीवानी वाद दायर किया। दिनांक 16.4.2002 को मुकदमे का एक पक्षीय फैसला सुनाया गया। उक्त डिक्री को प्रतिवादी द्वारा दायर एक आवेदन पर खारिज कर दिया गया, जिसमें लिखित बयान या जवाब दावा दायर करने और न्यायालय में 30 दिनों के भीतर संपूर्ण बकाया राशि जमा करने का निर्देश दिया गया था।

3.दिनांक 25.7.2004 को दोनों पक्षों द्वारा हस्ताक्षरित एक समझौता ज्ञापन पेश किया गया जिसके तहत प्रतिवादी ने अपीलकर्ता को 11710/- रुपये की बकाया किराया राशि तथा लागत की राशि 4000 रुपये का भुगतान करने के अपने दायित्व को स्वीकार किया और प्रतिवादी/ प्रत्यर्थी छह महीने की अवधि के भीतर उक्त राशि का भुगतान करने पर भी सहमत हुआ। विशेष रूप से सहमति निम्नलिखित प्रकार व्यक्त की गई:

"एच। यदि प्रतिवादी उपरोक्त किसी भी शर्त का उल्लंघन करता है, तो वादी प्रतिवादी से वादग्रस्त आवास का खाली कब्जा प्राप्त करने का हकदार होगा, जिसमें प्रतिवादी को कोई आपत्ति नहीं होगी।"

4. उक्त समझौते के मद्देनजर मामले को लोक अदालत में प्रेषित किया गया और समझौते की शर्तों के अनुरूप सिविल वाद का निर्णय सुनाया गया।

5. दिनांक 21.7.2005 को अपीलकर्ता ने समझौता डिक्री के निष्पादन के लिए एक आवेदन दायर किया, जिसमें आक्षेप लगाया गया कि प्रतिवादी समझौता डिक्री से उत्पन्न अपने दायित्वों को पूरा करने में विफल रहा और इसलिए, अपीलकर्ता परिसर का कब्जा वापस पाने का हकदार है। इसके बाद की घटनाओं को उच्च न्यायालय ने अपील के तहत फैसले में इस प्रकार वर्णित किया है- "04/10/2005 को उपस्थिति के बाद

प्रतिवादी ने आपत्तियां दायर कीं, जिसमें यह आरोप लगाया गया था कि याचिकाकर्ता द्वारा अनुचित प्रभाव के तहत उक्त समझौते पर हस्ताक्षर प्राप्त किए गए थे और याचिकाकर्ता द्वारा 10,000/- रुपये की राशि के लिए रसीद ही जारी नहीं की गई थी, जिसका भुगतान प्रतिवादी द्वारा किया गया था। उक्त आवेदन को विद्वान निष्पादन न्यायालय ने आदेश दिनांक 24/10/2005 द्वारा खारिज कर दिया और यह निर्देश दिया था कि चूंकि निष्पादन न्यायालय डिक्री के परे नहीं जा सकता है, इसलिए, कब्जा वारंट जारी किया जाए। पुनः दिनांक 09/11/2005 को आपत्तियां दाखिल की गई जिसमें 25,000/- रूपये के समायोजन का दावा किया गया। आदेश दिनांक 22/11/2005 द्वारा प्रतिवादी द्वारा दायर आपत्तियों को खारिज कर दिया गया, तथापि राशि जमा करने के लिए 15 दिन का समय दिया गया। चूंकि राशि प्रतिवादी द्वारा जमा की गई थी, इसलिए, दिनांक 23/12/2005 के आदेश के तहत निष्पादन न्यायालय ने निष्पादन को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि चूंकि वादग्रस्त आवास के कब्जे का अनुतोष वैकल्पिक था और प्रतिवादी ने देर से ही सही, राशि जमा करवा दी है, इसलिए, याचिकाकर्ता वैकल्पिक राहत का हकदार नहीं है और निष्पादन याचिका को खारिज कर दिया गया था, जिसके खिलाफ 07/01/2006 को एक अपील दायर की गई थी और दिनांक 16/03/2006 के आदेश के तहत अपीलीय न्यायालय ने माना कि निष्पादन न्यायालय

को डिक्री के पीछे जाने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है। लेकिन याचिकाकर्ता को कोई राहत नहीं दी गई जिसके खिलाफ याचिकाकर्ता द्वारा 05/02/2006 को रिट याचिका दायर की गई थी, जिसे डब्ल्यूपी नंबर 6163/06 के रूप में क्रमांकित किया गया था और दिनांक 08.02.2007 के आदेश के तहत रिट याचिका की अनुमति दी गई थी और रिट कोर्ट द्वारा तय किए गए अवधारणीय बिंदुओं पर निर्णय करने के निर्देश के साथ निष्पादन न्यायालय को मामला पुनः प्रेषित कर दिया गया था

6. आदेश का प्रवर्तनशील भाग इस प्रकार है:

"10. इस कारण से, मैं याचिकाकर्ता द्वारा दायर निष्पादन आवेदन से उत्पन्न बिंदुओं पर निर्णय लेने के लिए मामले को निष्पादन न्यायालय में भेजने के लिए बाध्य हूं। निष्पादन न्यायालय **नई बहू**[1] मामले में निर्धारित कानून और क्षेत्र को नियंत्रित करने वाले किसी भी अन्य मामले को ध्यान में रखते हुए आवेदन पर फैसला करेगी और निम्नलिखित बिंदुओं पर स्पष्ट निष्कर्ष देगा"

1. क्या समझौता डिक्री दिनांक 25.7.2005 अमान्य या अकृत है, जहां तक यह प्रतिवादी को वादग्रस्त घर से बेदखल करने की राहत से संबंधित है?

2. यदि नहीं, तो क्या याचिकाकर्ता द्वारा व्यतिक्रम का आरोप लगाया गया है ताकि वह बेदखली की डिक्री को निष्पादित करने का हकदार हो सके?

7., निष्पादन न्यायालय ने प्रतिप्रेषण पर आदेश दिनांक 17.4.2007 द्वारा निर्णीत किया कि प्रतिवादी ने निष्पादन न्यायालय में समझौता डिक्री के तहत देय पूरी राशि का भुगतान कर दिया था, हालांकि ऐसा भुगतान निर्धारित छह महीने की अवधि के बाद किया गया था। इसके अलावा, निष्पादन न्यायालय ने समझौता डिक्री के संबंध में प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत दलीलों का परीक्षण किया कि अधिनियम की धारा 13(1)(ए) के मद्देनजर समझौता डिक्री जहां तक प्रतिवादी द्वारा निर्धारित समय के भीतर बकाया राशि जमा करने में विफल रहने की स्थिति में उसे बेदखल करने का प्रावधान करती है, शून्य है। निष्पादन न्यायालय के आदेश का प्रवर्तनशील भाग इस प्रकार है:

“20. इसलिए, विवाद्यक संख्या ए के संबंध में यह निर्णय लिया गया है कि बेदखली के अनुतोष के संबंध में समझौता डिक्री शून्य है और किराए के भुगतान में चूक के लिए मप्र आवास नियंत्रण अधिनियम के प्रावधानों के विपरीत ऐसी किसी भी बेदखली का आदेश नहीं दिया जा सकता है। चूंकि समझौता डिक्री के निष्पादन योग्य भाग को शून्य माना गया है, ऐसी परिस्थितियों में निष्पादन न्यायालय बकाया किराया या

बकाया किराए के शेष भाग के भुगतान में चूक के लिए बेदखली का आदेश पारित नहीं कर सकता है। तदनुसार विवाघक संख्या बी निर्णीत किया जाता है।"

8. उक्त आदेश से व्यथित होकर, अपीलकर्ता ने 2007 की सिविल पुनरीक्षण याचिका संख्या 173 के माध्यम से फिर से उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया। उच्च न्यायालय ने दिनांक 28.10.2010 को अपीलाधीन निर्णय की पुनरीक्षण याचिका को खारिज कर दिया। इसलिए यह अपील पेश की गई है।

9. उच्च न्यायालय द्वारा लेखबद्घ किये गये कारण इस प्रकार हैं-

“8. निस्संदेह पूरा किराया प्रतिवादी द्वारा जमा कर दिया गया था। यह भी विवादित नहीं है कि समझौता डिक्री की शर्तों के अनुसार राशि छह माह की अवधि के भीतर जमा नहीं की गई थी। हालांकि बाद में किराया जमा करा दिया गया। चूंकि याचिकाकर्ता को मप्र आवास नियंत्रण अधिनियम की धारा 12(1)(ए) के तहत आधार उपलब्ध था क्योंकि प्रतिवादी ने नोटिस की तारीख से दो महीने की अवधि के भीतर किराया जमा नहीं किया था और अधिनियम की धारा 13(1) के तहत समन प्राप्त होने की तारीख से एक महीने के भीतर भी किराया जमा नहीं किया था। इसलिए, याचिकाकर्ता के पास समझौता करने और किराया जमा करने में देरी को माफ करने और प्रतिवादी को किराया जमा करने के लिए छह

महीने का अतिरिक्त समय देने का कोई कारण नहीं था। ऐसा प्रतीत होता है कि चूंकि वादग्रस्त संपत्ति पर याचिकाकर्ता के स्वामित्व को लेकर पक्षों के बीच गंभीर विवाद था, इसलिए याचिकाकर्ता द्वारा रियायत दी गई थी। दिनांक 23.11.2005 के आदेश के अनुसार निष्पादन न्यायालय ने प्रतिवादी के अच्छे आचरण को ध्यान में रखते हुए बकाया किराया जमा करने के लिए समय को 15 दिन और बढ़ा दिया है।''

9. आदेश दिनांक 23.11.2005 के अवलोकन से यह प्रतीत होता है कि प्रतिवादी द्वारा केवल 10,000/- रूपये की राशि उसी दिन जमा करवा दी गयी थी। इस प्रकार, निर्णय और डिक्री दिनांक 25.07.2004 के तहत प्रतिवादी को छह महीने के भीतर बकाया जमा करना आवश्यक था जो समय 24.01.2005 को समाप्त हो गया। निष्पादन याचिका में दिनांक 23.11.2005 के आदेश द्वारा समय 15 दिन और बढ़ा दिया गया। दिनांक 23.11.2005 के आदेश को याचिकाकर्ता द्वारा चुनौती नहीं दी गई, जिसका अर्थ है कि याचिकाकर्ता उस आदेश से सहमत था जिसके तहत समय आगे बढ़ाया गया था।

10. इसके अलावा यदि किरायेदार द्वारा अधिनियम की धारा 13(1) के अनुसार किराया जमा किया जाता है, तो प्रतिवादी अधिनियम की धारा 12(3) और 13(5) के तहत बेदखली के खिलाफ सुरक्षा का हकदार है और मामले में लगातार तीन महीने तक चूक करने पर प्रतिवादी के खिलाफ

बेदखली का एक और वाद दायर किया जा सकता है। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, इस न्यायालय का विचार है कि निष्पादन याचिका को पूर्ण संतुष्टि के साथ खारिज करने में विद्वान निष्पादन न्यायालय द्वारा कोई अवैधता नहीं की गई है। इसलिए, याचिकाकर्ता द्वारा दायर याचिका में कोई गुण या बल नहीं है और इसे खारिज किया जाता है।"

10. अपीलकर्ता के विद्वान वकील द्वारा यह तर्क दिया गया है कि निष्पादन न्यायालय ने इस निष्कर्ष पर पहुंचने में गलती की कि समझौता डिक्री अधिनियम की धारा 13 के साथ असंगत है और उच्च न्यायालय निष्पादन न्यायालय के आदेश की शुद्धता पर अपना निष्कर्ष दर्ज करने में विफल रहा तथा अन्यत्र भटक गया।

11.दूसरी ओर, प्रतिवादी के विद्वान वकील ने दलील दी कि निष्पादन न्यायालय का निष्कर्ष कि समझौता डिक्री, जहां तक प्रतिवादी को बेदखल करने का प्रावधान करती है, शून्य है और अधिनियम की धारा 13 के मद्देनजर भले ही किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है, तथापि उच्च न्यायालय उक्त प्रश्न का परीक्षण करने में विफल रहा।

12. उच्च न्यायालय ने निष्पादन न्यायालय के इस निष्कर्ष की सत्यता की जांच नहीं की कि समझौता डिक्री, जहां तक वह निर्धारित समय के भीतर किराए की बकाया राशि जमा करने में विफलता की स्थिति

में प्रतिवादी को बेदखल करने से संबंधित थी, अधिनियम के प्रावधानों के साथ असंगत है और इसलिए शून्य है।

13. अपील में परित फैसले से, जिसका प्रासंगिक भाग पहले पैरा 9 में उद्घृत किया गया है, ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता के मामले को तीन आधारों पर खारिज कर दिया (i) अपीलकर्ता को यह समझौता करने की आवश्यकता नहीं थी जिसके कारण डिक्री पारित की गई. उच्च न्यायालय के अनुसार, अपीलकर्ता द्वारा इस तरह का समझौता किया गया था जिसमें अपीलकर्ता के स्वामित्व के बारे में एक गंभीर विवाद था (ii) जब अपीलकर्ता द्वारा निष्पादन याचिका दायर की गई थी, तो निष्पादन न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 23.11.2005 द्वारा प्रतिवादी को बकाया किराए का भुगतान करने के लिए 15 दिन का समय दिया। अपीलकर्ता ने उक्त आदेश को चुनौती देने का विकल्प नहीं चुना। उच्च न्यायालय के अनुसार, अपीलकर्ता की ऐसी विफलता का तात्पर्य यह है कि अपीलकर्ता ने उक्त आदेश को स्वीकार कर लिया है, इसलिए, अपीलकर्ता/मकान मालिक अपनी संपत्ति के कब्जे के प्रत्युद्घरण का हकदार नहीं था; (iii) इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि प्रतिवादी ने अंततः बकाया किराया जमा कर दिया, उसके कब्जे को अधिनियम की धारा 12(3) और 13(5) के मद्देनजर संरक्षित किया जाना आवश्यक है।

14. हमारी राय है कि उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए सभी कारण कानून में पोषणीय नहीं हैं। जिन कारणों ने अपीलकर्ता को समझौता करने के लिए मजबूर किया, वे वर्तमान वादग्रस्त बिंदु के निर्णय के लिए अप्रासंगिक हैं। प्रतिवादी/निष्पादित ऋणी इस आधार पर समझौता डिक्री का उल्लंघन नहीं कर सकता है कि उसके प्रतिद्वंद्वी ने अपने दावे की पोषणीयता के बारे में कुछ गंभीर विवाद के मद्देनजर समझौता किया है। समझौता करने में अपीलकर्ता का आचरण केवल अपीलकर्ता को समझौता डिक्री की तारीख से छह महीने की अवधि के भीतर कब्जा वापस पाने से रोकता है, चाहे प्रतिवादी ने अंतिम तिथि तक बकाया किराए का भुगतान किया हो या नहीं। यदि प्रतिवादी ने छह महीने की अवधि के भीतर किसी भी समय उक्त राशि का भुगतान कर दिया, तो अपीलकर्ता को इस वाद हेतुक के आधार पर प्रतिवादी की बेदखली का दावा करने से रोक दिया जाएगा जिसके कारण बेदखली का यह वाद दायर किया गया।

15. दूसरे कारण की बात करें तो, निष्पादन न्यायालय के दिनांक 23.11.2005 के आदेश को चुनौती देने में अपीलकर्ता की विफलता (जिसके द्वारा निष्पादन न्यायालय ने प्रतिवादी को किराए की बकाया राशि जमा करने के लिए 15 दिन का समय दिया था) अपीलकर्ता को विवादग्रस्त संपत्ति पर कब्ज़ा वापस पाने का दावा करने से रोकती है, भी उतना ही अपोषणीय है, क्योंकि:

(i) हमारी राय में, निष्पादन न्यायालय का दिनांक 23.11.2005 का आदेश उसके अधिकार क्षेत्र से परे और अमान्य है। एकमात्र स्रोत जो सिविल कोर्ट को समय बढ़ाने की शक्ति प्रदान करता है, वह सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 148 के तहत है जो इस प्रकार है: -

148. समय का विस्तार-जहां इस संहिता द्वारा निर्धारित या अनुमत किसी कार्य को करने के लिए न्यायालय द्वारा कोई अवधि तय की जाती है या दी जाती है, तो न्यायालय समय-समय पर अपने विवेक से ऐसी अवधि को कुल तीस दिनों से अनधिक बढ़ा सकता है, भले ही मूल रूप से तय की गई या दी गई अवधि समाप्त हो गई हो।

इस धारा की भाषा से यह स्पष्ट है, ऐसी शक्ति का प्रयोग केवल उस मामले में किया जा सकता है जहां इस न्यायालय द्वारा निर्धारित किसी भी कार्य को करने के लिए न्यायालय द्वारा एक अवधि तय की गई है या दी गई है। इस तरह के एक समझौता डिक्री में, यह शर्त कि निर्णय लेने वाले देनदार को एक निर्दिष्ट अवधि के भीतर पैसे का भुगतान करना आवश्यक है, पक्षकारों के बीच के समझौते द्वारा एक शर्त है और यह न्यायालय द्वारा तय की गई या दी गई अवधि नहीं है। इसलिए, ऐसी स्थिति में सीपीसी की धारा 148 लागू नहीं होती। हुकुमचंद बनाम बंसीलाल और अन्य एआईआर 1968 एससी 86 में इस न्यायालय के फैसले से भी हमारा मत सुदृढ़ है।

(ii) हमारी राय में, दिनांक 23.11.2005 का आदेश वस्तुतः डिक्री के संशोधन के बराबर है और निष्पादन न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के बिना है, इसलिए, यह अमान्य है।

यह कानून का स्थापित सिद्धांत है कि निष्पादन न्यायालय डिक्री से परे नहीं जा सकता है। किसी डिक्री को संशोधित करने का उसे कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है। उसे डिक्री को वैसे ही क्रियान्वित करना होगा जैसी वह है। दीपा भार्गव और अन्य बनाम महेश भार्गव और अन्य [(2009) 2 एससीसी 294] में इस न्यायालय ने इस प्रकार कहा: -

"9. उक्त समझौते की शर्तों की व्याख्या या लागू होने के संबंध में कोई संदेह या विवाद नहीं है। यह भी विवाद में नहीं है कि प्रतिवादी / निर्णीत ऋणी ने इसकी शर्तों के अनुसार कार्य नहीं किया। यह सर्वविदित है कि एक निष्पादन न्यायालय डिक्री के परे नहीं जा सकता है। किसी डिक्री को संशोधित करने का उसे कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है। इसे डिक्री को वैसे ही क्रियान्वित करना होगा जैसी यह है...।"

16. यह सुस्थापित विधि है कि ऐसा शून्य आदेश न तो कानूनी अधिकार और न ही दायित्व पैदा कर सकता है। इसलिए, अपीलकर्ता को इस आधार पर विवादित संपत्ति पर कब्ज़ा वापस पाने के उसके अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता है कि उसने इस तरह के शून्य आदेश को चुनौती देने का विकल्प नहीं चुना है।

17. उच्च न्यायालय द्वारा दिया गया तीसरा कारण और निष्पादन न्यायालय का निष्कर्ष, जो आपस में जुड़े हुए हैं, कि समझौता डिक्री में जहां तक किरायेदार द्वारा डिक्री से छह महीने की अवधि के भीतर किराए के बकाया का भुगतान करने में विफलता की स्थिति में उसे बेदखल करने का प्रावधान था, अधिनियम के प्रावधानों के विपरीत है इसलिए, हमें अधिनियम की धारा 12 और 13 के दायरे की जांच करने की आवश्यकता है क्योंकि वे वर्तमान उद्देश्य के लिए प्रासंगिक हैं।

18. अधिनियम की धारा 12(1) मकान मालिक को अपने किरायेदार को केवल उक्त धारा में बताए गए आधारों पर बेदखल करने के अधिकार को प्रतिबंधित करती है:

12. किरायेदारों की बेदखली पर प्रतिबंध.- (1) किसी भी अन्य कानून या अनुबंध में किसी भी प्रतिकूल बात के होने के बावजूद, किसी किरायेदार के खिलाफ किसी भी आवास से बेदखली के लिए किसी भी सिविल न्यायालय में, केवल निम्नलिखित आधारों में से एक को छोड़कर कोई वाद दायर नहीं किया जा सकता है, , अर्थात्-

19. अपीलकर्ता ने अपने मुकदमे में एकमात्र आधार यह बताया कि किरायेदार पर किराया बकाया है। ऐसा आधार अधिनियम की धारा 12(1) (ए) के आधारों में से एक है जो मकान मालिक को किरायेदार को बेदखल करने में सक्षम बनाता है यदि वह सफलतापूर्वक यह स्थापित कर सके कि

किरायेदार पर वास्तव में किराया बकाया है और उसने, स्वयं पर नोटिस की तामील होने के पश्चात, मांग के बावजूद धारा 12(1)(ए) के तहत निर्दिष्ट अवधि के भीतर किराये की बकाया राशि न तो निविदत्त की और न ही भुगतान की। धारा 12(1)(ए) इस प्रकार है:-

12(1)(ए) कि किरायेदार ने उस तारीख से दो महीने के भीतर कानूनी रूप से वसूली योग्य किराए की पूरी बकाया राशि का न तो भुगतान किया है और न ही उसे जमा किया है, जिस दिन किराए की बकाया राशि की मांग का नोटिस उस पर विहित तरीके से तामील किया गया है।"

20. अधिनियम की धारा 13(1) में कहा गया है कि किरायेदार किराए की दर, जिस पर मकान मालिक द्वारा उसमें निर्दिष्ट विभिन्न अवधियों के लिए प्रार्थना की गई थी, पर गणना की गई राशि का भुगतान या तो न्यायालय में जमा करेगा या मकान मालिक को करेगा,। (जिसका विवरण फिलहाल आवश्यक नहीं है). ऐसा जमा या भुगतान दो आकस्मिकताओं में किया जाना आवश्यक है जो निम्न प्रकार हैं:-

(i) किरायेदार की बेदखली के लिए वाद संस्थित होने पर, चाहे किसी भी आधार पर बेदखली की मांग की गई हो; या

(ii) बेदखली के डिक्री या आदेश के खिलाफ किरायेदार द्वारा की गई अपील या कार्यवाही में।

आगे यह निर्धारित किया गया है कि ऐसा जमा या भुगतान समन की तामील के एक महीने की अवधि के भीतर किया जाना आवश्यक है, यदि जमा, अपील या अन्य कार्यवाही शुरू करने के संबंध में, जैसा भी मामला हो, मुकदमे के लंबित रहने के दौरान या तारीख से एक महीने की अवधि के भीतर किया जा रहा है। इसके अलावा, उक्त उपधारा न्यायालय के उस अधिकार को भी मान्यता देती है कि वह अपने विवेक से उसे किए गए आवेदन पर एक महीने की उक्त अवधि बढ़ा सकता है। उप-धारा (2) देय किराए की दर के संबंध में किसी भी विवाद के मामले में प्रक्रिया का प्रावधान करती है, जबकि उप-धारा (3) उस व्यक्ति के संबंध में, जिसे किराया देना है,किसी भी विवाद के मामले में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया का प्रावधान करती है।

21. धारा 13 के मद्देनज़र जिस दलील को निष्पादन न्यायालय का समर्थन मिला, वह यह है-

"...उपरोक्त लोक अदालत का निर्णय कि बकाया किराया भुगतान न करने पर निर्णीत ऋणी को बेदखल किया जा सकता है, को लागू नहीं किया जा सकता क्योंकि मप्र आवास नियंत्रण अधिनियम की धारा 13 के अनुसार, यदि निर्णीत ऋणी, मकान मालिक द्वारा समन जारी करने की तारीख से एक महीने के भीतर या निर्णीत ऋणी द्वारा किए गए आवेदन पर न्यायालय द्वारा दिए गए निर्धारित समय के भीतर, किराये का

भुगतान करता है, तो वह धारा 12 एमपी आवास नियंत्रण अधिनियम के तहत बेदखली से सुरक्षा का हकदार होगा, इस प्रकार स्पष्ट रूप से निष्पादन कार्यवाही में पूरी डिक्रीटल राशि का भुगतान कर दिया गया है, इसलिए, निर्णीत ऋणी बेदखली से सुरक्षा का हकदार होगा।''

22. उपधारा (5) घोषित करती है कि यदि कोई किरायेदार उपधारा (1) या (2) के तहत आवश्यक जमा या भुगतान करता है, तो आवास के कब्जे की वसूली के लिए कोई डिक्री या आदेश पारित नहीं किया जा सकता है। उप-धारा (5) केवल उन मामलों में, जहां धारा 13(1) या (2) की आवश्यकता का अनुपालन करने की स्थिति में कब्जे में चूक करने वाले किरायेदार की रक्षा करती है, जहां किराए के बकाया के भुगतान न करने के आधार पर धारा 12(1)(ए) के तहत बेदखली की मांग की जाती है|.

23. अपीलकर्ता का मामला धारा 12(1)(ए) के अंतर्गत आता है और इसलिए, प्रतिवादी के विद्वान वकील ने निष्पादन न्यायालय के निर्णय को कायम रखने के लिए धारा 13(5) का हवाला दिया। धारा 13(5) इस प्रकार है:-

"(5) यदि कोई किरायेदार उप-धारा (1) या उप-धारा (2) के अनुसार आवश्यक जमा या भुगतान करता है, तो आवास के कब्जे की वसूली के लिए न्यायालय द्वारा कोई डिक्री या आदेश नहीं दिया जाएगा। किरायेदार

द्वारा किराए के भुगतान में चूक, लेकिन न्यायालय, ऐसी लागत, जो वह मकान मालिक को देना उचित समझे, प्रदान कर सकती है ।"

24. हमारे विचार में धारा 13 को पढ़ने से स्पष्ट रूप से यह संकेत मिलता है कि निर्णीत ऋणी (किरायेदार) द्वारा न्यायालय में किराए का भुगतान या जमा केवल बेदखली या बेदखली के किसी डिक्री या आदेश के विरुद्ध अपील (किरायेदार द्वारा) के मुकदमे के लंबित होने के दौरान ही किया जाता है।। बेदखली की डिक्री की निष्पादन कार्यवाही पर धारा 13 का कोई अनुप्रयोग नहीं है।

25. इस संबंध में धारा 13(1) की भाषा बहुत स्पष्ट एवं सुस्पष्ट है। हम यह समझने में असफल हैं कि न्यायालय धारा 13 को कैसे पढ़ सकता है, जिसमें निर्णीत ऋणी (किरायेदार) को निष्पादन कार्यवाही के दौरान भुगतान करके अपने कब्जे की रक्षा करने में सक्षम बनाने की संभावना है, इस तथ्य के बावजूद कि मकान मालिक को किराया भुगतान न करने पर उसे पहले ही व्यतिक्रमी ठहराया जा चुका है। धारा 13 की ऐसी व्याख्या धारा 12(1)(ए) को पूरी तरह से नष्ट कर देगी। इसलिए, न केवल धारा 13(1) की भाषा, बल्कि यदि निष्पादन न्यायालय द्वारा दी गई व्याख्या को स्वीकार कर लिया जाता है तो धारा 12(1)(ए) और धारा 13(1) के बीच एक अपूरणीय असंगतता भी उत्पन्न होगी - हमारे विचार में यह

मानने के लिए पर्याप्त है कि निष्पादन न्यायालय की धारा 13(1) की व्याख्या पोषणीय नहीं है।

26. श्रीमती नई बहू बनाम लाला रामनारायण और अन्य (1978) 1 एससीसी 58,के प्रकरण में इस न्यायालय के निर्णय को देखा जाए तो इस न्यायालय ने कहा कि एक मकान मालिक, जिसका अपने किरायेदार को बेदखल करने का अधिकार एक कानून द्वारा निर्बंधित है (कानून में निर्दिष्ट आधारों तक), किरायेदार को केवल किरायेदार को बेदखल करने के वाद में पारित समझौता डिक्री के आधार पर सफलतापूर्वक बेदखल नहीं कर सकता है। किरायेदार की सहमति के अलावा, किरायेदार को बेदखली के लिए उत्तरदायी बनाने वाले वैधानिक रूप से निर्धारित आधारों में से एक ऐसी डिक्री की वैधता के लिए आवश्यक रूप से मौजूद होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, इस न्यायालय ने तय किया कि एक किरायेदार, जिसने सहमति डिक्री का सामना किया है, वह अभी भी यह सवाल उठा सकता है कि कोई भी वैधानिक शर्त मौजूद नहीं है जो सहमति डिक्री पारित होने पर उसे बेदखल करने के लिए उत्तरदायी बनाती है।

27. हस्तगत मामले में, किरायेदार पर स्पष्ट रूप से किराया बकाया था, इस तथ्य को किरायेदार द्वारा हस्ताक्षरित समझौता ज्ञापन द्वारा स्वीकार किया गया है जिसे डिक्री में शामिल किया गया था। किसी भी दृष्टि से देखें, तो हम न तो अपीलाधीन फैसले से सहमत हो पा रहे हैं

तथा न ही मकान मालिक की निष्पादन याचिका को खारिज करने वाले निष्पादन न्यायालय के आदेश को बरकरार रखने में समर्थ हो पा रहे हैं। तदनुसार अपील स्वीकार की जाती है। अपीलकर्ता द्वारा दायर निष्पादन याचिका को भी अनुमति दी जाती है। निष्पादन न्यायालय अब प्रतिवादी को विवादित परिसर से बेदखल करने और अपीलकर्ता को उसका कब्जा सौंपने के लिए आवश्यक कदम उठाएगा।

28. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया गया।

अपील स्वीकार की गई।

i**नोटः-** यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी श्री पूना राम गोदारा आर.जे.एस. द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।